नारदीय भक्ति सूत्र

भूमिका

यह शास्त्र भक्ति की व्याख्या से ही प्रारम्भ हुआ है। क्या है भक्ति? यह ही इसमें बतलाया गया है। पर क्यों? इसकी ज़रूरत क्यों पड़ी? जग-जीवन के रहस्य, मानव मस्तिष्क के लिये आदि काल से ही एक पहेली बने हुये हैं। क्या है, क्यों है जग? ऐसा क्यों है, वैसा क्यों है? कौन शक्ति है इसे बनानेवाली, चलानेवाली? चाँद, सूरज,तारे, नदी, पहाड़ क्या हैं, कैसे हैं, क्यों हैं? एक-दूसरे मानव के दिल-दिमागों में इतना फर्क क्यों है? इतना अशान्त क्यों है मानव? शान्ति,संतोष,आनन्द कैसे मिले? खोजी इनके उत्तर खोजते भी रहे हैं। इस महत् रहस्य को जानने के, व्यक्ति – वैभिन्य के कारण,तीन मार्ग सामने आये- ज्ञान, कर्म और भक्ति। विश्लेषण का ज्ञान मार्ग बुद्धिपरक लोगों को रास आता है, 'खाली क्या बैठना,कुछ करूं' वालों को कर्म मार्ग और 'क्यों सोचूं, क्यों करूं, अपने सिर बोझा क्यों लूं', 'अपना सब कुछ उसको ही समर्पित कर दूं' ,वालों को भक्ति मार्ग। अन्त में तो तीनों ही रास्ते एक ही जगह पहुंचते हैं- परम रहस्य तक। दृष्टा और दृश्य, सृष्टा और सृष्टि, ज्ञाता, ज्ञान, और ज्ञेय एक ही हैं। ज्ञान व कर्म वाले अपनी- अपनी पगडंडियों पर चलकर व भक्ति वाले राजमार्ग से बिना ज़्यादा जद्दोजहद किये ,पहुंच जाते हैं। प्रथम दो राहों में शुरू में अहम् की प्रधानता होती है, पर भक्ति मार्ग में ' मैं कुछ नहीं, तू ही कर्ता है' की प्रधानता शुरू से ही रहती है। अहम् को बढ़ने का अधिक अवकाश नहीं होता। अधिकत: सामान्य जन इसी श्रेणी में आते हैं। अत: साधारण जन के लिये यही राह अधिक सुगम है। वैसे भक्ति मार्ग में भी कई लोग ज्ञान व कर्म के पथिकों की तरह अहम् का फुग्गा फुला ही लेते हैं ,अपवाद हर जगह होते हैं। ज्ञान व कर्म 'नेति-नेति' करके, नकारात्मक होकर फिर सकारात्मक बनते हैं। भक्ति की तो शुरूवाद ही सकारात्मकता से ही होती है।

नारद मुनि होते हुये भी साधारण मानव प्रतीत होते हैं। हमारी तरह कुछ करने की खुजली जैसे उन्हें भी हो, वे इधर- उधर की लगाते हैं, काम भ्रमित हो जाते हैं, चलते ही रहते हैं- स्वर्ग से पृथ्वी और पृथ्वी से स्वर्ग तक। यानि कि यहॉं के ही नहीं, वहॉं के भी हैं- पुल की भॉंति। अपने से ही लगते हैं, दूर का सितारा नहीं। अत: इनके कहे पर विश्वास भी हो जाता है। बड़े सीधे-सादे , थोड़े से शब्दों में,उन्होंने अपनी बातें रख दी हैं। आम जनता के पास समय की कमी शायद सदा से ही रही होगी, तभी उन्होंने इसे संक्षिप्त रूप ही दिया है। व्यर्थ बातों का,क्रिया-कांडों का उल्लेख तक नहीं किया। बस सार-सार सब बता दिया। किसी भक्त में भक्ति भावना है तो उसमें अंदर-बाहर कौन से लक्षण दिखाई देंगे, इसका विशद वर्णन किया है। भक्ति में क्या अपेक्षित है, क्या नहीं और क्यों नहीं, यह भी तार्किक व्यक्ति के लिये बता दिया है। भक्ति के लिये तन-मन से क्या करना होगा, यह भी विस्तार से बताया है। कैसा भी स्वभाव हो,रूचि हो, हर व्यक्ति भक्ति मार्ग का अनुसरण कर सकता है,

, उसे हताश होने की ज़रूरत नहीं, ज़रूरत है तो बस चैतन्य, मीरा आदि की तरह लोकमत की परवाह न करने की। ऐसा सांत्वना भरा,सकारात्मक, नाच,गान, खुशियों से भरा, प्रभु मिलन का यह भक्ति पथ, नारद मुनि ने जन-जन को दिया है।

इसी शास्त्र का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर रही हूं,कारण वही ,कि संस्कृत अब जन भाषा नहीं रह गई है। एक-दो जगह, स्पष्टता के लिये ,ब्रेकेट में कुछ शब्द लिख दिये हैं। आशा है, पाठक समझ पायेंगे।

धन्यवाद

फोन नं: 24229605 मालती

नारदीय भक्ति सूत्र

अथातो भक्तिं व्याख्यास्याम: ।।1।।

सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा ।।2।।

अमृतस्वरूपा च ।।3।।

यल्लब्ध्वा पुमान सिध्दो भवति

अमृतो भवति तृप्तो भवति ।।4।।

यत्प्राप्य किंचित वांछति न शोचति

न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति ।।5।।

यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति

आत्मरामो भवति ।।6।।

सा न कामयमाना निरोध रूप त्वात् ।।7।।

निरोधस्तु लोकवेद व्यापारन्यास: ।।8।।

तस्मिन्नन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च ।।9।।

अन्याश्रयाणां त्यागोऽ नन्यता ।।10।।

लोक वेदेषु तदनुकुलाचरणं

तद्विरोधिषूदासीनता ।।11।।

भवतु निश्चय दाढर्यादूर्ध्वं

शास्त्र रक्षणम् ।।12।।

अन्यथा पातित्याशंङ्कया ।। 13 ।।

लोकोऽ पि तावदेव किन्तु भोजनादि व्यापार:

त्वाशरीर धारणावधि ।। 14 ।।

तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात् ।।15 ।।

पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्य: ।।16।।

कथादिष्वति गर्ग: ।। 17।।

आत्मरत्य विरोधेनेति शांडिल्य: ।।18।।

नारदस्तु तदर्पिता खिलाचरिता

तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति ।। 19।।

अस्त्येवमेवम् ।। 20।।

यथा ब्रजगोपिकानाम् ।। 21।।

तत्रापि न माहात्म्यज्ञान विस्मृत्यपवाद: ।।22 ।।

तद्विहीनं जाराणामिव ।।23 ।।

नास्त्येव तस्मिंस्तत्सुख सुखित्वम् ।।24।।

सा तु कर्मज्ञान योगेभ्योऽ प्यधिकतरा ।।25 ।।

फलरूपत्वात् ।।26 ।।

ईश्वरस्याप्यभिमान द्वेषित्वाद् दैन्य प्रियत्वाच्च ।।27 ।।

तस्या ज्ञानमेव साधनभित्येके ।।28।।

अन्योन्याश्रय त्वमितन्ये ।।29।।

स्वयं फलरूपतेति ब्रम्हकुमारा ।।30।।

राजगृह भोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात् ।।31।।

न तेन राजपरितोष: क्षुधा शान्तिर्वा ।।32 ।।

तस्मात्सैव ग्राह्या मुमुक्षुभि: ।।33 ।।

तस्या साधनानि गायन्त्याचार्य: ।।34 ।।

तत्तु विषयत्यागात् संगत्यागाच्च ।। 35।।

अव्यावृत भजनात् ।।36 ।।

लोकेपि भगवद्गुण श्रवण कीर्तनात् ।।37 ।।

मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा ।।38 ।।

महत्संगस्तु दुर्लभोS गम्योS मोघश्च ।।39 ।।

लभ्यतेS पि तत्कृपयैव ।।40 ।।

तस्मिंस्तज्जने भेदभावात् ।।41।।

तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम् ।।42 ।।

दु:संग सर्वथैव त्याज्य: ।। 43।।

काम क्रोध मोह स्मृतिभ्रंश बुद्धिनाश सर्वनाश कारण त्वात् ।।44 ।।

तरंगायिता अपीमे संगातसमुद्रायन्ति ।।45 ।।

कस्तरति कस्तरति मायाम?य: संगास्त्यजति

यो महानुभावं सेवते निर्ममो भवति ।।46 ।।

योविविक्तस्थानं सेवते यो लोकबन्धमुन्मूलयति

निस्त्रैगुण्यो भवति योगक्षेमं त्यजति ।।47 ।।

य: कर्मफलं त्यजति कर्माणि संन्यस्यति

ततो निर्द्वन्दो भवति ।।48।।

वेदानपि संन्यस्यति केवलं विच्छिन्नानुरागं लभते ।।49।।

स तरति स तरति स लोकांस्तारयति ।।50।।

अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम् ।।51।।

मूकास्वादमवत् ।।52।।

प्रकाशते क्वापि पात्रे ।।53।।

गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षण वर्धमानम्

अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभवरूपम् ।।54।।

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव श्रृणोति भाषयति

तदेव चिन्तयति ।।55।।

गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादिभेदाव्दा ।।56।।

उत्तरस्मांदुत्तरस्मात्पूर्वपूर्वा श्रेयाय भवति ।।57।।

अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ ।।58।।

प्रमाणान्तर स्यानपेक्षत्वात् स्वयं प्रमाणत्वात् ।।59।।

शान्ति रूपात्परमानन्द रूपाच्च ।।60।।

लोकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्म लोकवेदत्वात् ।।61।।

न तदसिद्धो लोकव्यवहारो हेय: किंतु फलत्यागस्तत्साधनं

च कार्यमेव ।।62।।

स्त्री धन नास्तिक वैरी चरित्रं न श्रवणीयम् ।।63।।

अभिमान दम्भादिकम् त्याज्यम् ।।64।।

तदर्पिताखिलाचार: सन् काम क्रोधाभिमानादिकं

तस्मिन्नेव करणीयम् ।।65।।

त्रिरूपभंग पूर्वकं नित्यदास नित्यकांता भजनात्मकं

वा प्रेमैव कार्यम् प्रेमैव कार्यम् ।।66।।

भक्ता एकान्तिनो मुख्या: ।।67।।

कंठावरोध रोमांचाश्रुभि: परस्पर लपमाना

पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च ।।68।।

सुतीर्था कुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मी कुर्वन्ति कर्माणि

सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि ।।69।।

तन्मया: ।।70।।

मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवता: सनाथा चेयं भूर्भवति ।।71।।

नास्ति तेषु जाति विद्या रूप कुल धन क्रियादि भेद: ।।72।।

यतस्तदीया: ।।73।।

वादो नावलम्ब्य ।।74।।

बाहुल्यावकाशादनियतत्वच्य ।।75।।

भक्तिशास्त्राणि मननीयानी तदुद्बोधक

कर्माणयापि करणीयानी ।।76।।

सुखदु:खेच्छा लाभादि त्यक्ते काले प्रतीक्ष्यमाण

क्षणार्धमपि व्यर्थं न नेयम् ।।77।।

अहिंसा सत्य शौच दयास्तिक्यादि चरित्र्याणि

परिपालनीयानि ।।78।।

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भगवानेव भजनीय: ।।79।।

स कीर्त्यमान: शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति

च भक्तान् ।।80।।

त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी भक्तिरेव गरीयसी ।।81।।

गुणमाहात्म्यासक्ति रूपासक्ति पूजासक्ति स्मरणासक्ति

दास्यासक्ति साख्यासक्ति कान्तासक्ति वात्सल्यासक्त्यामनि

वेदनासक्ति तन्मयतासक्ति परमविरहासक्तिरूपा

एकधाप्येकादशधा भवति ।।82।।

इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया एकमता: कुमार व्यास

शुक शांडिल्य गर्ग विष्णु कौण्डिन्य शेष उद्धव आरूणि

बलि हनुमत् विभिषणादयो भक्त्याचार्या: ।।83।।

य इदं नारदप्रोक्तं शिवानुशासनम् विश्वसिति श्रद्धते

स प्रेष्ठं लभते स प्रेष्ठं लभते इति । ।।84।।

नारद का भक्ति-सूत्र

कर लें अब भक्ति की व्याख्या ।। 1 ।

उस प्रति है वह परम प्रेम रूपा ।। 2 ।।

औ सुधास्वरूपा ।। 3 ।।

पाकर उसे सिद्ध,अमर औ तृप्त मनुज हो जाता ।। 4 ।।

फिर ना रहते राग-द्वेष, चिंता, वांछा,उद्धतता ।। 5 ।।

होकर मस्त और स्तब्ध आत्मवान् बन जाता ।। 6।।

वान्छा रूप न होकर होती वह निरोधरूपा ।। 7 ।।

कहें 'निरोध' जब लोक ज्ञान, कर्मों का अंत होता ।। 8 ।।

उदासीनता औरों से हो, होती बस उससे अनन्यता ।। 9 ।।

करें त्याग अन्याश्रय का तो वह कहलाती अनन्यता ।।10।।

जब उस प्रति ही होवें कर्म होती औरों से उदासीनता ।।11 ।।

भक्ति दृढ़ हो तो भी कर ले कर्म, लोक शास्त्रानुसार ।।12 ।।

ना तो गिर सकने की शंका होगी जो आया अहंकार ।।13 ।।

है जब तक तन भोजनादि जग कर्म करे औरों जैसे ।।14 ।।

भिन्न-भिन्न लक्षण भक्ति के मतान्तरों से अब कहते - ।।15 ।।

कहें पराशर पुत्र व्यास- पूजानुराग भक्ति है ।।16।।

गर्गाचार्य कहें- अनुराग कथा में ही भक्ति है ।।17।।

शांडिल्य कहें-स्वरति विरोध में रति ही तो है- भक्ति ।।18।।

कहें नारद- सब कर्म उसे अर्पित कर दें तो है भक्ति ।।19।।

परम व्याकुल हो जावें तब,जब होवे उसकी विस्मृति ।।20 ।।

इन सब जैसी होती भक्ति, यथा गोपिकाओं की ।।21 ।।

महात्म्य ज्ञान की विस्मृति तब अपवाद नहीं ही होती ।।22 ।।

बिन उसके अनुराग,प्रेम होता है बस वैश्याओं का ।।23।।

प्रियतम के सुख में न जहाँ,पर सुख का अनुभव होता ।।24 ।।

होती कर्म औ ज्ञान योग से श्रेष्ठ, यही भक्ति ।।25 ।।

यह फल स्वरूपिणी होती ।।26 ।।

प्रभु अभिमान भी होता द्वेष उसे दैन्य से है प्रीति ।।27।।

कहते कुछ भक्ति का साधन है उसका ही ज्ञान ।।28 ।।

कहें अन्य इक दूजे पर आश्रित हैं- भक्ति, ज्ञान ।।29।।

कहते ब्रह्मकुमार-स्वयं भक्ति ही है फलरूपा ।।30।।

राजमहल, भोजन आदि में यही दृष्टिगत होता ।।31।।

जान उन्हें संतोष न होता न हि भूख ही मिटती ।।32 ।।

गृहण करें इसलिये मोक्ष के इच्छुक केवल भक्ति ।।33 ।।

गाकर बतलाते आचार्य भक्ति के साधन अब- ।।34 ।।

विषय त्याग औ संग त्याग औ ।।35 ।।

अखंड भजन से वह आती ।।36 ।।

प्रभु गुण श्रवण और कीर्तन जग में करके भी आती ।।37।।

कृपा महत् जन या प्रभु की हो तभी मुख्यत: आती ।।38।।

महापुरूषों का संग है दुर्लभ और अगम्य, अमोघ ।।39।।

वह भी तब ही मिलता है जब कृपा उसीकी होय ।।40।।

प्रभु में औ उसके जन में होता न भेद कोई भी ।।41।।

साधो उसे, उसे साधो तज ।।42।।

मन दु:संग सदा ही ।।43।।

वह काम क्रोध मोह उपजाये स्मृति बुद्धि नष्ट करे ।।44।।

लहर सम आ सागर बन जाये सर्वनाश मन ही तो करे ।।45।।

जग से कौन तरे तरता है जग में कौन माया से?

जो मन का संग,मैं,मेरा त्यागे प्रभु प्रेमियों को सेवे ।।46।।

हानि- लाभ, सत्-रज-तम औ जग-बंध काट

इकला ही रमे ।।47।।

जो तजे कर्मफल औ कर्तापन द्वन्दहीन हो जावे ।।48।।

ले सन्यास वेद से भी जो, अखंड प्रेम वो पावे ।।49।।

वही तरता वही तरता वही लोगों को तार लेता ।।50।।

वर्णित न हो सके रूप प्रेम का ।।51।।

जैसे कि स्वाद गूंगे का ।।52।।

पर,किसी पात्र में सहसा कभी,वही चमक भी जाता ।।53।।

होता वांछा,गुण रहित,सूक्ष्म अति,टूटे न,बढ़े अनुभव रूपी ।।54।।

देखे,सुने,कहे व करे चिंतन उसका ही परा भक्ति ।।55।।

गुण भेदों से तीन तरह की गौणी भक्ति भी होती ।।56।।

तमस से रजस,रजस से सत्व श्रेय हैं, सब पहुंचा देतीं ।।57।।

अन्य दूसरी राहों से है सुलभ राह भक्ति की ही ।।58।।

है यह स्वयं प्रमाण रूप,ज़रूरत ना अन्य प्रमाणों की ।।59।।

होती यह परम शांत औ परमानंद रूप है इसका ही ।।60।।

जब सभी कर्म किये उसको अर्पित,रही न लोक चिंता बाकी ।।61।।

,तजे कर्म फल, पर ना त्यागे जग की कर्म नीति

जब तक ना मिल जाये सिद्धि ।।62।।

सुनने योग्य ना हैं चरित्र -स्त्री,धन,नास्तिक,वैरी के ।।63।।

अहम्, दंभ आदि भी छोड़े ।।64।।

करे अर्पण आचार,काम,मद,क्रोध भी उसके, जान यही ।।65।।

तीनों रूपों(स्वामी,सेवक,सेवा) को हटा सतत,करता रहे प्रेम ही

बस करे प्रेम ही एकान्तिक कान्ता, दास समाना ।।66।।

मुख्य करणीय कार्य होता, एक ही लक्ष्य में रहना ।।67।।

भक्तों के कंठ रूद्ध,नेत्र अश्रुपूरित,तन रोमांचित

करते वे संवाद परस्पर भू,निज कुल करते पावित ।।68।।

साधारण कर्म,तीर्थ औ शास्त्र ,भक्तों से ही हैं पवित्र ।।69।।

वे वर्तमान में तन्मय रहते और सभी होता विस्मृत ।।70।।

होते प्रमुदित पितर,नाचते देव,सनाथ भू हो जाती ।।71।।

भेद न उनमें जाति, विद्या, धन,कुल,रूप,क्रिया आदि ।।72।।

क्योंकि सब ही तो हैं उसके ।।73।।

विवाद सहारा ना होते ।।74।।

होते वाद-विवाद असीमित सदा अनियत ही रहते ।।75।।

मनन कर भक्ति शास्त्रों का,कर्म भक्ति वृद्धि के करे ।।76।।

'छुटें जब सुख-दु:ख,इच्छादि' में क्षणार्ध ना व्यर्थ करे ।।77।।

सत्य,अहिंसा,शुचिता,करूणा,आस्तिकतादि कर पालन ।।78।।

सदा सब भावों से निश्चिन्त,प्रभु भजन में रखता मन ।।79।।

सतत सुरति से शीघ्र खुले दिल स्वानुभव तब हो जाता ।।80।।

त्रिसत्यों(तन,मन,वचन)में भक्ति श्रेष्ठ ,

है भक्ति श्रेष्ठ अनुभव आता ।।81।।

है भक्ति एक पर भेद ग्यारह भक्त स्वभाव,रूचि कारण

गुण महात्म्य, रूप, पूजा, दास्य, सख्य, कांता, वेदन

परम विरह औ तन्मयता,वात्सल्य और स्मरण ।।82।।

इकमत से ऐसा ही कहते,जनमत से निर्भय भक्ताचार्य-

गर्ग, शेष, उद्धव, बलि, आरूणि, विष्णु, सनत्कुमार,

शुकदेव, विभीषण, हनुमान, शांडिल्य, कौडिन्य औ व्यास ।।83।।

नारद द्वारा कहे गये इस शिव अनुशासन में

रक्खें जो श्रद्धा, विश्वास प्रिय पावें, वे प्रियतम को पावें ।।84।।

।। इति ।।